मैंने बच्चों से क्या सीखा?

नेहा मिश्रा



बतौर शिक्षिका बच्चों के साथ काम करने का यह मेरा पहला अनुभव है। यूकेजी में साढ़े चार से करीब पाँच वर्ष तक के 10 बच्चे हैं। मुझे पूरे दिन बच्चों के साथ रहने का मौक़ा मिलता है। इस वजह से उनके साथ औपचारिक-अनौपचारिक बातचीत में, दिन भर में हो रही कई तरह की क्रियाओं के दौरान बच्चों को गहराई से समझने के भरपूर अवसर मिलते हैं। बच्चों के साथ काम करते हुए करीब छह माह ही बीते हैं, लेकिन कह सकती हूँ कि हर दिन मिल रहे नए-नए अनुभवों से बच्चों के प्रति समझ और भी विकसित होती जा रही है। बच्चों से लगातार बातचीत व उनके साथ काम करने के दौरान कई बार ऐसा समझ आया कि हम वयस्कों में ख़ासकर छोटे बच्चों को लेकर कई भ्रम होते हैं, जो यहाँ कक्षा में लगातार टूटते दिखते हैं। इस लेख में यही बताने का प्रयास कर रही हूँ कि मैंने बच्चों से क्या सीखा, ख़ासकर बच्चों के प्रति अपनी समझ को और भी विकसित करने में और कई भ्रमों को तोड़ने में।

बच्चे स्कूल जाते वक़्त रोते ही हैं। हम बड़ों के लिए यह एक स्वाभाविक-सी बात है। जिस घर से बच्चे का गहरा जुड़ाव है अचानक से उससे कहीं अलग, मानो बच्चे के लिए दूसरा ग्रह हो, वहाँ जबरन भेज दिया जाता है। कक्षा में उस बच्चे के लिए ऐसी चीज़ें बहुत कम ही होती हैं, जिससे वह जुड़ाव महसूस कर सके। फिर वह रोता है या रोती है। स्कूल में उसे डरा-धमकाकर बैठाया जाता है। ऐसे में सीखना क्या एक आनन्ददायक प्रक्रिया हो सकती है? यह एक सवाल है। बच्चों के साथ काम करके मैंने जाना कि बच्चे तो स्वाभाविक रूप से सीखने के प्रति इच्छुक होते हैं। आप उन्हें अच्छा माहौल दीजिए, वे स्कूल कभी नहीं छोड़ना चाहेंगे। कक्षा शुरू करने से पूर्व मेरी भी यही धारणा थी कि छोटे बच्चे अक्सर स्कूल आते वक़्त रोते हैं। लेकिन अगर स्कूल का वातावरण ऐसा हो, जहाँ छोटे बच्चे अपने घर और स्कूल में एक तरह का जुड़ाव पाते हैं तो वे हर रोज़ ख़ुशी-ख़ुशी स्कूल आना चाहते हैं। मुझे अपनी कक्षा का पहला दिन याद है। एक बच्चा बहुत बुरी तरह रोते हुए स्कूल आया। बड़ी मुश्किल से उसके पापा उसे क्लास तक पहुँचा पाए। लेकिन उसी दिन छुट्टी के वक़्त वह वापस जाने को तैयार नहीं था। मुझे उस दिन इसका कारण समझ नहीं आया। हालाँकि यह बात तय थी कि कक्षा का आकर्षक वातावरण, खिलौने बच्चों को आकर्षित करते ही हैं लेकिन इससे महत्त्वपूर्ण एक और बात थी। मैंने इस बच्चे में महसूस किया कि खेलते वक़्त, खाना खाते वक़्त जैसी जगहों पर तो यह बच्चा खूब बातें करता था, लेकिन जब हम सर्किल टाइम में कुछ गाते थे या कोई बात पूछी जाती तो डर उसके चेहरे पर साफ़ दिखता था। मैंने इसके लिए उस बच्चे की माँ से बात की तो पता चला कि वे उसे स्कूल से पहले तैयारी के लिए ट्यूशन भेज रही थीं, जहाँ उसे खूब मार पड़ती थी। उन्होंने बताया कि वह जाने से पहले हाथ जोड़कर बोलता था कि मुझे वहाँ मत भेजो। ट्यूशन वाली मैम कहती थीं कि उन्होंने ऐसे ही मार-मारकर कई बच्चे सुधारे हैं। सभी बच्चे ऐसे ही सीखते हैं। यह भी सुधर जाएगा। मैं नहीं समझ पाई कि किस सुधार की बात की जा रही है क्योंकि वह बच्चा तो सीखने के लिए स्वत: ही तैयार है। बहरहाल, बातचीत के बाद उसकी मम्मी ने उसका ट्यूशन छुड़वा दिया। उन्होंने बताया कि पहले वह ट्यूशन न जाने के लिए रोता था लेकिन अब तो खुद ही तैयार होकर स्कूल आता है। साढ़े चार साल के छोटे-से बच्चे को सुबह किसी को तैयार नहीं करना पड़ता। अगर कहीं छुट्टी जाना हो तो वह घर में जिद करता है कि पहले स्कूल में बताओ तब नानी के घर जाऊँगा, ऐसा उस बच्चे की माँ ने बताया। आकर्षक कक्षा से ज़्यादा भयमुक्त वातावरण, कक्षा में बच्चे का सम्मान व उसकी पहचान, स्कूल के प्रति उसकी रुचि का कारण बने।

इसी बच्चे से जुड़ा एक और वाकया है। वह कई दिन से अपना नाम लिखने की कोशिश कर रहा था। स्कूल में बच्चों के प्रवेश से पहले उनकी अलमारियों में उनके नाम लिखे गए थे। हाथ से बनाए गए फोटो समेत फोल्डर्स थे, स्लेट थी और एक कार्ड था, जिस पर उनका नाम था और फोटो थी। पहले दिन जब एक-दूसरे से परिचय हुआ तो यह सब हर बच्चे को दिया गया। नाम लिखना सिखाने के लिए कोई अलग से क्रिया नहीं कराई गई, लेकिन कुछ ही दिनों में बच्चे हर जगह केवल अपना नाम लिखते पाए गए। कोई भी काम शुरू करने से पहले सबसे पहले अपना नाम लिखते थे। शायद वे ऐसा इसलिए कर रहे हों, कि उन्हें पता तो था कि ये उनका नाम है पर वे इसे लिखना भी चाहते हैं। ये बच्चा कई दिनों तक देख-देखकर अपना नाम लिख रहा था एक दिन उसने अपना नाम बिना देखे लिखा और ज़ोर से चिल्लाया, "आज तो मज़ा आ गया, आज मैंने सीख लिया।" इस पर उसके लिए तालियाँ बजवाई गईं। कक्षा

में बच्चे की एक पहचान कि वह कक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण है, यहाँ उसकी एक पहचान है, वह किसी भीड़ का हिस्सा नहीं है, स्कूल के प्रति, पढ़ाई के प्रति रुचि का बड़ा कारण होता है। यह बात केवल एक-दो बच्चों की नहीं है, लगभग सारे बच्चों का कक्षा, स्कूल के प्रति यही बर्ताव है। मैं हैरान हूँ कि बच्चे जब इतने ही स्वाभाविक तरीक़े से, बिना किसी ज़ोर-ज़बरदस्ती के सीख सकते हैं, तो हम क्यों इस हद तक उन पर दबाव बनाते हैं।

छोटे बच्चे भी इस बात पर गहनता से सोच पाते हैं कि उनके साथ क्या अच्छा हो रहा है और क्या बुरा। भले ही उनके पास अपने विचार व्यक्त करने के लिए पूर्ण विकसित भाषा न हो, लेकिन उनके साथ घट रही घटनाओं पर उनके अपने विचार होते हैं। एक दिन खाना खाते वक़्त एक बच्चा कह रहा था कि उसे स्कूल आना बहुत अच्छा लगता है। दो दिन छुट्टी उसे बिलकुल भी अच्छी नहीं लगती। कारण पूछा तो उसने कहा, “यहाँ से पहले मैं आँगनवाड़ी जाता था, वहाँ अच्छा नहीं लगता था। वहाँ केवल दो खिलौने थे और मैडम मारती थीं। वहाँ दो डण्डे थे- एक बड़ा और एक छोटा। छोटे डण्डे से बहुत चोट लगती थी।'' मैंने पूछा, “तुम्हें भी किसी ने मारा क्या? '' तो उसने बताया, “हाँ, मैडम बोलने पर मारती थीं। जो भी बच्चे बात करते थे, उन्हें मारा जाता था।'' इस बच्चे की उम्र महज पाँच साल है। उसने बताया कि अगर कोई बच्चा रोता हुआ वहाँ आता तो मैडम कहतीं डण्डा लेकर आओ, तो बच्चे चुप हो जाते और जो चुप नहीं होता उसे मार पड़ती। बुरा लगता था, जब मैडम मारती थीं। बोलने पर मारते क्यों हैं, ये समझ नहीं आता। मैंने अगला सवाल किया कि तो तुम्हें यहाँ आकर डर नहीं लगा? तो उसने कहा, “बहुत डर लग रहा था। जब क्लास में आया तो मेरी आँखों से पानी आ रहा था पर मैं रो नहीं रहा था।'' मुझे लगा कि शायद मैं कुछ गलत समझ रही हूँ इसलिए मैंने बच्चे से पूछा कि अच्छा, तो जब पहली बार स्कूल आए तो डर के मारे रोना आ रहा था। तो उसने कहा, “नहीं, आँख से पानी आ रहा था, पर मैं रो नहीं रहा था, क्योंकि मैं खुश था। क्लास बहुत सुन्दर थी, यहाँ ढेरों खिलौने थे इसलिए मुझे अच्छा लगा। और भी अच्छा तब लगा जब मैंने देखा कि यहाँ कोई डण्डा नहीं था।'' हालाँकि बच्चे ने इतनी सफ़ाई से एक ही बार में पूरी बात नहीं बताई। काफ़ी देर तक हुई बातचीत में टुकड़ों—टुकड़ों में यह पूरी बात सामने आई। यहाँ यह ज़रूरी नहीं कि उसने अपनी बात समझाने के लिए किस टूटी—फूटी भाषा का इस्तेमाल किया होगा, ज़रूरी यह है कि उसने कितनी गहराई से इसे महसूस किया होगा। एक बच्ची, जो पहले किसी स्कूल से होकर आई थी, वह बोली, “ए, बी, सी, डी वाली मैम मारती थीं। वन, टू वाली मैम मारती थीं और छोटा अ से अनार वाली मैम मारती थीं। सुन्दर नहीं लिखने पर मार पड़ती थी।''

ऐसे ही तमाम अनुभव बच्चों ने साझा किए, जिनमें वे बड़ों के किए पर सवाल उठा रहे थे। इस विषय पर अन्य कई तरह की चर्चाएँ भी हो सकती हैं लेकिन मैं इस ओर ध्यान आकर्षित करना चाहती हूँ कि काफ़ी छोटे बच्चे भी अपने आसपास घट रही घटनाओं पर काफ़ी गहराई से सोचते हैं, उन पर प्रतिक्रिया दे पाते हैं। बच्चों के पास भले वह उपयुक्त भाषा न हो, जिससे वह अपनी पूरी बात समझा पाएँ लेकिन वह हर बात को महसूस कर रहे होते हैं। और अगर मौक़ा मिले तो उस विचार को औरों के सामने रख भी पाते हैं जिन्हें हम बड़ों को ध्यान से सुनने की आवश्यकता है। जब मैंने कक्षा की शुरुआत की तो, कक्षा में रखा हर सामान बच्चों के ही सुपुर्द था। चूँकि यह छोटे बच्चों की कक्षा है तो यहाँ ढेर सारे खिलौने और कई लर्निंग मटीरियल हैं, जो बच्चों को बहुत आकर्षित करते हैं। कक्षा में एक छोटी-सी लाइब्रेरी भी है, जहाँ छोटी-छोटी किताबें भी हैं। मैंने पहले ही दिन बच्चों को बताया कि यह क्लास उनकी है, यहाँ रखा हर सामान उनका है, मुझे पूरा विश्वास है कि वे इसकी देखभाल करेंगे।

एक बार की बात है कि डायट से कुछ लोग क्लास विजिट करने आए थे। उनमें से एक व्यक्ति ने बच्चे से पूछा कि तुम ये खिलौने तोड़ते नहीं हो? तो उस बच्चे ने झट से उत्तर दिया, “ये हमारे खिलौने हैं, हम इन्हें क्यों तोड़ेंगे।'' तब मेरा ध्यान उस बात पर गया जो मैंने पहले दिन बच्चों से कही थी। मुझे याद है कि कक्षा में सामान को लेकर बच्चों से कई बार बातचीत करने की भी ज़रूरत नहीं पड़ी, बल्कि वे तो आपस में ही बातचीत करते दिखे कि देखो, ये किताब फट गई है, इसे चिपका दो। अब तक कक्षा में किसी भी सामान का नुक़सान बच्चों ने जान-बूझकर नहीं किया। यह बात यहाँ बताना इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि एक सामान्य-सी मान्यता है कि बच्चे, ख़ासकर उम्र में छोटे बच्चे चीज़ों का नुकसान करते हैं। लेकिन बच्चों के साथ बातचीत, उनके साथ काम करने के दौरान बच्चों के प्रति मेरी समझ विकसित हुई कि अगर बच्चों पर विश्वास जताया जाए, उनके साथ वयस्कों की तरह ही पेश आया जाए तो वे कभी भी आपको निराश नहीं करेंगे। बच्चे ज़िम्मेदार होते हैं, बशर्ते उनके साथ समानता व सम्मान के साथ पेश आया जाए। एक और ख़ास बात जो मैंने अनुभव की है कि बच्चे यह पसन्द नहीं करते कि उनसे एक छोटा बच्चा समझकर पेश आया जाए। जैसे, अक्सर देखा होगा कि बच्चों से बात करते हुए बड़ों की भाषा बचकानी-सी हो जाती है या हम उनसे कुछ गुस्से से या निर्देश के रूप में ही बातचीत कर रहे होते हैं। एक सामान्य-सी बोली में, जिसमें बचपना न झलकता हो और सम्मान के साथ हुए वार्तालाप में, जहाँ उनकी राय को भी ध्यानपूर्वक सुना जाए तो बच्चे आपकी बात को भी बहुत ध्यान से सुनते हैं और उस पर अमल भी करते हैं। अगर बच्चों को कुछ समझाते समय उसका तर्क बताया जाए, तो

वे बात बहुत अच्छी तरह समझते हैं। बच्चों से बड़ों की तरह बर्ताव, उन पर विश्वास जताना, तर्क के साथ बात करना और प्रोत्साहन बच्चे के विकास में मददगार है। बच्चों से कोई भी बात झूठ न बोलें। बच्चों को समझ आ जाता है कि यह सच नहीं है या उन्हें गम्भीरता से नहीं लिया जा रहा है।

छोटे बच्चों के साथ काम करते हुए मुझे ऐसा भी महसूस हुआ कि यह ज़रूरी नहीं है कि कोई ग़लती करने पर हर बार बच्चे को उसका एहसास कराया जाए, या फिर डाँटा जाए। कभी-कभी चुप होकर उन्हें खुद की ग़लती पर सोचने का भी स्थान दे देना चाहिए। एक दिन खेल के दौरान दो बच्चियों से एक अन्य बच्ची को चोट लग गई। और उसने ज़ोर से रोना शुरू कर दिया। उन दोनों बच्चियों को लगा कि अब तो डाँट ज़रूर पड़ेगी। डर उनके चेहरे पर साफ़ दिख रहा था। मैंने उन तीनों को एक साथ बैठा दिया, पर मैंने लड़ाई पर कोई बात नहीं की। वह दोनों बच्चियाँ चुपचाप बैठी रहीं। बाद में मैंने देखा कि वे दोनों उस बच्ची, जो रो रही थी, से कुछ बातें कर रही थीं। उनमें क्या बात हो रही थी, यह तो मैंने नहीं सुना लेकिन उनके बातचीत के हाव-भाव से यह बात तय है कि लड़ाई पर बहस तो नहीं हो रही थी। फिर वे तीनों दिन भर साथ रहीं। बच्चों में ऐसे वाकये लगभग होते रहते हैं और ऐसे ही अलग-अलग तरीक़ों से समस्याओं का हल निकाला जाता है। कई बार थिंकिंग मैट पर बैठाया जाता है जहाँ बच्चा सोचकर बताता है कि उसने क्या गलती की है या उसकी कोई गलती नहीं है। कई बार दोनों पक्ष थिंकिंग मैट पर बैठते हैं और सबके सामने अपना पक्ष रखते हैं। इससे एक फ़ायदा यह भी होता है कि अगली बार के लिए सब बच्चे पहले ही सजग हो जाते हैं और एक-दूसरे का ख़्याल रखते हैं। जान-बूझकर कभी मारपीट नहीं होती। छोटे बच्चे अक्सर गिरते रहते हैं। सन्तुलन कम होता है। लेकिन मैंने ध्यान दिया कि अब बच्चे किसी को चोट लगने पर तुरन्त सॉरी बोल देते हैं। फिर भी दिन-भर एक-दूसरे के लिए शिकायतों का अम्बार भी लगा रहता है। पर ऐसा भी नहीं है कि किसी भी बात पर ग़ौर नहीं किया जाना चाहिए। बच्चे को भी इस बात का पूर्ण विश्वास होना चाहिए कि अगर उसके साथ कुछ ग़लत हुआ है तो वहाँ मौजूद बड़े लोग उसकी बात को सुनेंगे लेकिन हर छोटी-छोटी बातों पर प्रतिक्रिया की आवश्यकता नहीं लगती। उन पर विश्वास जताया जाए तो वो अपनी समस्याओं के हल निकाल सकते हैं।

एक-दूसरे का पक्ष समझने से एक और फ़ायदा यह भी हुआ कि बच्चे एक-दूसरे के भावों को भी समझने लगे हैं। एक दिन कुछ खेल हो रहा था, जिसमें बच्चों को दौड़कर आना था और मुँह से टॉफी उठाकर वापस लौटना था। इस दौरान एक बच्चा ऐसा नहीं कर पाया और उसकी टॉफी कोई दूसरा बच्चा ले गया। वह बच्चा वहीं खड़े होकर रोने लगा। तभी दो बच्चे दौड़ते हुए आए और अपनी टॉफी उसे दे दी और उस बच्चे का नाम लेकर 'तुम जीत गए, तुम जीत गए' चिल्लाने लगे। छोटे बच्चों में एक-दूसरे के भावों को समझने की भी एक गहरी समझ होती है।

बच्चे अपने आप में एक बीज की तरह सम्पूर्ण सम्भावनाएँ लिए हैं। ज़रूरत है तो बस उन्हें वह उर्वरक माहौल देने की जहाँ वे पूर्ण रूप से पनप सकें और इस माहौल को बनाने के लिए बेहद ज़रूरी है कि हम पहले बचपन को समझ सकें।

नेहा मिश्रा अज़ीम प्रेमजी स्कूल, उधमसिंह नगर, उत्तराखण्ड में पढ़ाती हैं। उन्होंने अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बेंगलूरु से प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा में विशेषज्ञता के साथ एमए (शिक्षा) की उपाधि प्राप्त की है। उनकी रुचि शिक्षक-बाल सम्बन्ध, बचपन, समाज के निर्माण में बचपन की भूमिका और बच्चों के सामाजिक-भावनात्मक विकास को समझने में है। उन्होंने पत्रकारिता और जनसंचार में भी स्नात्तकोतर उपाधि प्राप्त की है। उन्हें समाचार रिपोर्टिंग, लेखन और सम्पादन में चार साल का अनुभव है। उन्होंने हिन्दी के राष्ट्रीय दैनिक समाचार पत्र, अमर उजाला, लखनऊ और दैनिक जागरण, देहरादून के साथ काम किया है। उन्हें लिखना और गाना पसन्द है। उनसे neha.mishra@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।